1935G The Seven Nay: A short explanation

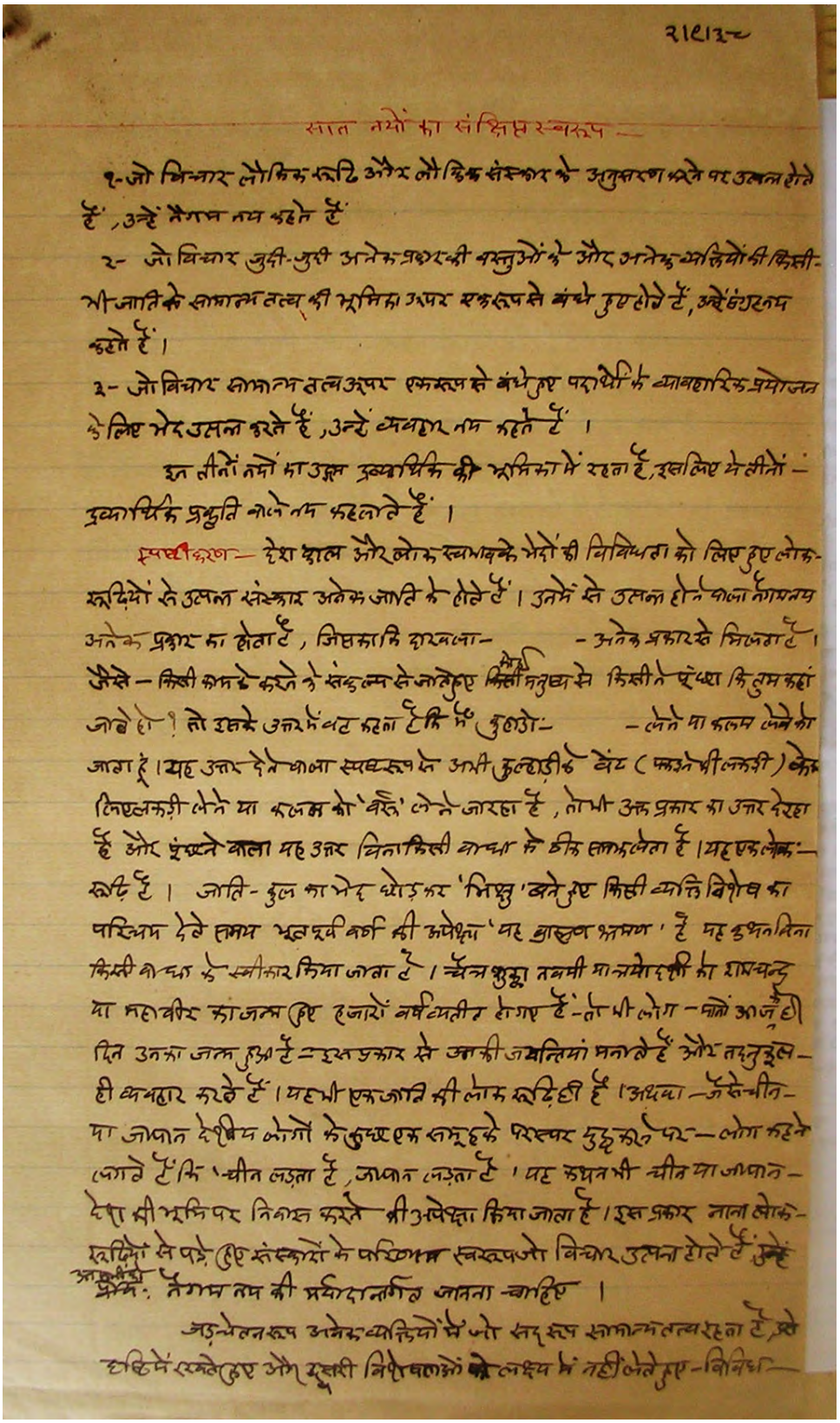

२।८।३८

सात नयों का संक्षिप्त स्वरूप —

१- जो विचार लौकिक रूढि और लौकिक संस्कार के अनुसरण करने पर उत्पन्न होते हैं, उन्हें नैगम नय कहते हैं।

२- जो विचार जुदी-जुदी अनेक प्रकार की वस्तुओं के और अनेक व्यक्तियों की किसी-भी जाति के सामान्य तत्त्व की भूमिका ऊपर एकरूप से बंधे हुए होते हैं, उन्हें संग्रहनय कहते हैं।

३- जो विचार सामान्य तत्त्व ऊपर एकरूप से बंधे हुए पदार्थों के व्यावहारिक प्रयोजन के लिए भेद उत्पन्न करते हैं, उन्हें व्यवहार नय कहते हैं।

इन तीनों नयों का उद्गम द्रव्यार्थिक की भूमिका में रहता है, इसलिए ये तीनों — द्रव्यार्थिक प्रकृति वाले नय कहलाते हैं।

स्पष्टीकरण — देश काल और लोक स्वभाव के भेदों की विविधता को लिए हुए लोक-रूढियों से उत्पन्न संस्कार अनेक जाति के होते हैं। उनमें से उत्पन्न होने वाला नैगमनय अनेक प्रकार का होता है, जिसका कि दाखला- - अनेक प्रकार से मिलता है। जैसे — किसी काम के करने के संकल्प से जाते हुए कोई मनुष्य से किसी ने पूंछा कि तुम कहां जाते हो? तो इसके उत्तर में वह कहता है कि मैं कुल्हाड़ी - लेने या कलम लेने को जाता हूं। यह उत्तर देने वाला स्पष्टरूप से अभी कुल्हाड़ी के बेंट (पकड़ने की लकड़ी) के लिए लकड़ी लेने या कलम को 'बरू' लेने जा रहा है, तो भी उक्त प्रकार का उत्तर दे रहा है और पूंछने वाला यह उत्तर बिना किसी बाधा के ठीक समझ लेता है। यह एक लोक-रूढि है। जाति-कुल का भेद छोड़कर 'भिक्षु' बने हुए किसी व्यक्ति विशेष का परिचय देते समय भूतपूर्व वर्ण की अपेक्षा 'यह ब्राह्मण श्रमण' है यह कथन बिना किसी बाधा के स्वीकार किया जाता है। चैत्र शुक्ला नवमी या त्रयोदशी को रामचन्द्र या महावीर का जन्म हुए हजारों वर्ष व्यतीत हो गए हैं - तो भी लोग — मानों आज ही दिन उनका जन्म हुआ है - इस प्रकार से उनकी जयन्तियां मनाते हैं और तदनुकूल — ही व्यवहार करते हैं। यह भी एक जाति की लोक रूढि ही है। अथवा — जैसे चीन- या जापान देशीय लोगों के कुछ एक समूह के परस्पर युद्ध करने पर — लोग कहने लगते हैं कि 'चीन लड़ता है, जापान लड़ता है'। यह कथन भी चीन या जापान — देश की भूमि पर निवास करने की अपेक्षा किया जाता है। इस प्रकार नाना लोक-रूढियों से पड़े हुए संस्कारों के परिणाम स्वरूप जो विचार उत्पन्न होते हैं उन्हें आचार्यों ने नैगम नय की मर्यादान्तर्गत जानना चाहिए।

जड़-चेतन रूप अनेक व्यक्तियों में जो सद् रूप सामान्य तत्त्व रहता है, उसे दृष्टि में रखते हुए और दूसरी विशेषताओं को लक्ष्य में नहीं लेते हुए - विविध —

व्यक्तियों को एकरूप समान यह विचारना — कि सारा विश्व सद्-रूप है, क्योंकि सत्ता के बिना कोई भी वस्तु नहीं है, बस, इस प्रकार का विचार संग्रह नय कहलाता है। इसी प्रकार कपड़े की अनेक जाति या व्यक्तियों को लक्ष्य में न लेकर — केवल कपड़ापन रूप — सामान्य तत्त्व पर दृष्टि रखते हुए यह विचारना कि 'यहां एक मात्र कपड़ा ही है' — संग्रह नय है। इस प्रकार संग्रह नय के सामान्य तत्त्व के लिए अनन्त दृष्टान्त कल्पना किए जा सकते हैं। सामान्य तत्त्व जितना विशाल है, उतना ही संग्रह नय विशाल है और सामान्य जितना संकुचित या अल्प है उतना ही संग्रह नय छोटा है। परंतु जो-जो विचार सामान्य तत्त्व को लेकर विविध वस्तुओं के एकीकरण की ओर प्रवृत्त होते हैं वे सभी संग्रह नय की श्रेणि में जानना चाहिए।

31913— विविध वस्तुओं को एकरूप जान लेने के पीछे भी जैसे उनकी विशेष जानकारी हासिल होवे, या उनके व्यावहारिक उपयोग करने का प्रसंग आवे उसी प्रकार उनके विशेष रूप से भेद करके पृथक्करण करना पड़ता है केवल 'कपड़ा' कहने से जुदी-जुदी जाति के कपड़ों का ज्ञान नहीं होता है। जैसे केवल खादी लेने वाला मनुष्य कपड़ों की जाति का विभाग किये बिना उसको खरीद नहीं सकता है, क्योंकि कपड़े की जातियां अनेक हैं, जिस प्रकार यह कपड़ा खादी का है, यह मील का है, इत्यादि भेद करना पड़ते हैं; इसी प्रकार तत्त्वज्ञान के प्रदेश में भी — सद्-रूप वस्तु जड़ और चेतन इस प्रकार दो भेद वाली है। चेतन तत्त्व भी संसारी और मुक्त इस प्रकार से दो प्रकार का है इत्यादि रूप से पृथक्करण करना पड़ता है। इस जाति के पृथक्करणोन्मुख सभी विचार व्यवहार नय की श्रेणि में आते हैं।

ऊपर बताये गये तरीका से यह बात जानी जा सकती है कि नैगमनय लोकरूढ़ि पर अवलम्बित है और लोकरूढ़ि को लेकर ही चलता है सो इस प्रकार का आरोप सामान्य तत्त्व के आश्रय होने से नैगमनय के सामान्यगामीपना स्पष्ट है। संग्रह नय तो सीधी रीति से ही एकीकरण-रूप बुद्धिव्यापार वाला होने से सामान्यानुगामी है ही। व्यवहार नय भी पृथक्करणोन्मुख बुद्धिव्यापार रूप है, तो भी, उसकी क्रिया सामान्य की भित्ति पर ही आश्रित है, इसलिए वह भी सामान्यगामी है। इस प्रकार उक्त तीनों नय द्रव्यार्थिक नय माने जाते हैं।

प्रश्न — उक्त तीनों नयों में भी कमी फर्क क्या है?

उत्तर — नैगम नय का विषय सबसे विशाल है, क्योंकि वह सामान्य और विशेष दोनों ही लोकरूढ़ियों को कभी मुख्यरूप से —

और कभी गौणरूप से अवलम्बन करता है। संग्रह नय का विषय नैगमनय से छोटा है, क्योंकि वह एक मात्र सामान्य को ही विषय करने वाला है। और व्यवहार नय का विषय तो संग्रह नय से भी छोटा है, क्योंकि वह संग्रह नय से संगृहीत विषय के ऊपर ही विभिन्न विशेषताओं के आधार पर पृथक्करण करने से एक मात्र विशेष को ही विषय करने वाला है। इस प्रकार तीनों ही नयों का विषय क्षेत्र उत्तरोत्तर अल्प होते हुए भी परस्पर में पौर्वापर्य संबंध वाला ही है। भावार्थ— सामान्य, विशेष और इन दोनों के संबंध का ज्ञान— नैगम नय कराता है। इसी में से संग्रह नय जन्म लेता है और संग्रह नय की भांति ऊपर ही व्यवहार नय का चित्र खींचा जाता है।

४- जो विचार— भूत और भविष्य काल की वस्तुओं को छोड़कर केवल वर्तमान काल को स्पर्श करते हैं, उन्हें ऋजुसूत्र नय कहते हैं।

५- जो विचार शब्द प्रधान बनकर कितने ही शाब्दिक धर्मों की तरफ ढलकर तदनुकूल अर्थभेद की कल्पना करते हैं, उन्हें शब्द नय कहते हैं।

६- जो विचार शब्द की व्युत्पत्ति के आधार पर अर्थभेद की कल्पना करते हैं उन्हें समभिरूढ नय कहते हैं।

७- जो विचार— शब्द के फलितार्थ से घटते हुए हों, और तद्रूप ही वस्तु को विषय करते हों, दूसरी प्रकार से नहीं, उन्हें एवंभूत नय कहते हैं।

यद्यपि मनुष्य की कल्पना भूत और भविष्य को एक ओर छोड़कर नहीं चल सकती है, तथापि अनेक बार मनुष्य की बुद्धि तात्कालिक परिणाम की ओर ढलकर वर्तमान की ओर ही अधिक जोर पकड़ती है। इस स्थिति में यह बात मानने की प्रेरणा प्राप्त होती है कि जो उपस्थित है- सामने है, वही सत्य है, वही ही कार्यकारी है और भूत या भविष्य कालीन वस्तु आज कार्यकारी या कार्य साधक न होने से शून्य के समान है। वर्तमान कालीन समृद्धि सुख की साधिका होने से समृद्धि कही जा सकती है, परन्तु भूत कालिक समृद्धि का स्मरण या भावी समृद्धि की कल्पना ये दोनों ही बातें वर्तमान में सुख की ~~साधक नहीं हैं~~ सामग्री को प्राप्त नहीं करा सकती हैं। इसी प्रकार- जो पुत्र होकर माता-पिता की सेवा करे- यथार्थ में वही पुत्र है; परन्तु जो पुत्र या तो भूत काल में उत्पन्न होकर मर चुका हो या आगे- भविष्य में उत्पन्न होने-

वाला हो, वह आज कार्यसाधक न होने से पुत्र नहीं कहा जा सकता है। इस प्रकार के केवल वर्तमानकालिक विचारों को ऋजुसूत्र नय की कोटि में रख सकते हैं।

शब्द — जो विचारों की गहराई में उतरने वाली बुद्धि, एक बार भूत और भविष्य काल के भी भेद उड़ाने को तैयार हुई है, तब वही बुद्धि दूसरी बार उससे भी आगे बढ़कर दूसरे भी भेदों को छोड़ने को तैयार हो जाती है। तभी ही किसी बार वह शब्द को स्पर्श करती हुई चलती है और यह विचारती है कि जो वर्तमानकाल को, भूत या भविष्य से जुदा करके एक मान उसे ही स्वीकार करती है, तो एक अर्थ में प्रयुक्त होने वाले भिन्न-भिन्न लिंग, काल, संख्या, कारक, पुरुष, उपसर्ग वाले शब्दों के अर्थ भी क्यों न भिन्न-भिन्न माने जावें। जैसे — तीनों कालों में सूत्ररूप एक वस्तु कोई भी नहीं है, किन्तु वर्तमानकालस्थित ही वस्तु, फकत वस्तु है, वैसे ही भिन्न-भिन्न लिंगवाला, भिन्न-भिन्न संख्यावाला और भिन्न-भिन्न कालादि वाले शब्दों से कही जाने वाली वस्तु भी भिन्न-भिन्न ही मानी जानी चाहिए। ऐसा विचारने वाली बुद्धि काल और लिंग आदि के भेद से अर्थ में भेद मानती है। जैसे शास्त्रों लिखा है कि 'राजगृह नाम का नगर था' इस वाक्य का स्थूल रीति से यह अर्थ होता है कि इस नाम का नगर भूतकाल में था किंतु आज नहीं है। जबकि आज लेखक के समय में भी वैसी रीति से 'राजगृह' नगर है। यहाँ शंका होती है कि जब वर्तमान में वह नगर है, तो 'था' ऐसा कहने का क्या भाव है? तो इसका समाधान शब्द नय देता है और वह कहता है कि वर्तमान के राजगृह से भूतकाल का राजगृह भिन्न ही है और उसी भूतकालीन नगर के प्रस्तुत होने से 'राजगृह था' यह वाक्य कहने में आता है। यह काल के भेद में अर्थभेद का उदाहरण दिया गया है। अब लिंगभेद से अर्थभेद दिखाते हैं:— जैसे — कुंआ, कुइया; इनमें पहला शब्द नर जाति और दूसरा शब्द स्त्री जाति का है और इन दोनों शब्दों से कल्पित हुआ अर्थभेद भी व्यवहार में देखा जाता है। कितने ही लोग नक्षत्र के नाम से बोलचाल में प्रयुक्त होते हैं, तब इस नय के अनुसार — 'अमुक तारा नक्षत्र है, या यह मघा नक्षत्र है,' यह व्यवहार नहीं कर सकते हैं क्योंकि इस नय लिंग—

~~लिंगभेद, अर्थभेद~~ के भेद होने पर अर्थ में भेद स्वीकार करता है, इससे 'तारा और नक्षत्र, या मघा और नक्षत्र।' इन दोनों ही शब्दों को एक साथ एक अर्थ में प्रयोग नहीं कर सकता है। संस्थान, प्रस्थान, उपस्थान, या आराम, विराम आदि शब्दों में एक ही धातु के होते हुए भी जो अर्थ में भेद दिखाई देता है, उसे ही यह शब्द नय की भूमिका तैयार करती है। इस प्रकार विविध शाब्दिक धर्मों के आधार पर जो अर्थभेद की अनेक मान्यतायें प्रचलित हैं; वे सभी शब्दनय की कोटि के अन्तर्गत हैं।

७।४।३८ शाब्दिक धर्मों के भेद के आधार पर अर्थभेद की कल्पना को लेकर हुई बुद्धि — उससे भी आगे बढ़कर व्युत्पत्तिभेद की ओर ढलती है और यह मानने के लिए प्रेरणा करती है कि जो अनेक जुदे-जुदे शब्दों को एक अर्थ मानने में आते हैं, सो स्पष्ट रीति से उन शब्दों का एक ही अर्थ नहीं है, किंतु जुदा-जुदा ही अर्थ है। उदाहरण के तौर पर यह नय, यह — कहता है, कि यदि लिंगभेद या संख्याभेद आदि से अर्थ में भेद माना जाता है, तो शब्दभेद ही अर्थ का भेद करने वाला क्यों न माना जाय? भावार्थ — यह नय, राजा, नृप भूपति आदि एकार्थक माने जाने वाले शब्दों की व्युत्पत्ति के अनुसार विभिन्न अर्थों की कल्पना करता है और कहता है कि जो राज चिन्हों से शोभित हो, वह राजा है, जो मनुष्यों की रक्षा करे, वह नृप है और पृथ्वी का पालन-संवर्धन करे, वह भूपति है, इस प्रकार उक्त तीनों नामों से कहे जाने वाले — एक ही अर्थ में व्युत्पत्ति के अनुसार अर्थभेद की मान्यता के रखने वाले विचारों को समभिरूढ़ नय कहते हैं। पर्यायवाचक शब्दों के भेद से उत्पन्न होने वाली सभी अर्थभेदरूप कल्पनायें इस नय की कोटि में आ जाती हैं।

उक्त प्रकार से सविशेष ~~तल स्पर्शी~~ गहराई में जाने वाली बुद्धि; वस्तु-स्वरूप के तल में प्रवेश करती है और कहती है, कि जो व्युत्पत्ति के भेद से अर्थ-भेद मानने में आता है, तो फिर ऐसा मानना चाहिए कि जब व्युत्पत्ति सिद्ध अर्थ-घटता होय, तभी वहीं उन शब्दों का वह (निरुक्ति सिद्ध) अर्थ स्वीकार करना — चाहिए और उन शब्दों से उन अर्थों का प्रतिपादन करना चाहिए, अन्य-समय में नहीं। इस कल्पना के अनुसार "जो राज चिन्हों से शोभित-होते हुए तदनुकूल योग्यता को धारण करे, वही राजा है एवं जो मनुष्यों के संरक्षण का उत्तरदायित्व रखता हो, वही 'नृप' है" इतने मात्र कहने से ही यह नय विराम नहीं ले लेता है, किन्तु-समभिरूढ़ नय से बहुत आगे बढ़कर के कहता है कि —

जब स्पष्टरूपसे वह 'राजदंड' धारण किये हो, राज्यशासन का कार्य कर रहा हो – तभी वह 'राजा' है अन्य का नहीं। जिस समय वह ठीकरीति से मनुष्यों का-प्रजा का पालन कर रहा हो तभी वह 'नृप' है, अन्यत्र नहीं। भावार्थ – यह नय उस व्यक्ति में उसी समय ही 'राजा' 'नृप' आदि शब्दों का प्रयोग करना चाहता है जब कि वे अपने वाच्य-अर्थ विद्यमान हों। इसी प्रकार जब कोई व्यक्ति तन-मन से सेवाकार्य में लगा हुआ हो, तभी वह 'सेवक' नाम से कहा जाना चाहिए। इस प्रकार जो भी व्यक्ति जब भी अपने नामानुसार जैसा काम कर रहा हो, तभी उस-उस प्रकार के विशेषण या विशेष्य नाम से उसका व्यवहार करना चाहिए, इस ~~प्रकार~~ जाति की सभी मान्यतायें एवंभूत-नय की श्रेणि में आती हैं।

ऊपर कही हुई चारों प्रकार की विचार श्रेणियों में जो भेद है, वह ऊपर दिये गए उदाहरणों से स्पष्ट हो गया है, इसलिए अब उसे पृथक् जानने की आवश्यकता नहीं है, तो भी यह तो जान ही लेना चाहिए कि पूर्व-पूर्व नय की अपेक्षा उत्तरोत्तर नय सूक्ष्म, सूक्ष्मतर हैं, तो-भी उत्तरोत्तर नयों के विषयों का आधार पूर्व-पूर्व नयों का विषय ही है।

ऊपर बतलायी गयी ये चारों नय पर्यायार्थिक कहलाती हैं, उसका कारण यह है कि ऋजुसूत्रनय केवल वर्तमान काल को स्वीकार करके भूत और भविष्य काल को मानने से इनकार करता है, ~~इसलिए~~ इस नय का विषय स्पष्ट रूप से एकदम सामान्य मिट जाता है और विशेष मात्र रह जाता है, इसलिए ऋजुसूत्रनय से ही पर्यायार्थिक नय का आरंभ माना जाता है। ऋजुसूत्र के पीछे वाले-तीनों नय तो उत्तरोत्तर अधिक से अधिक विशेषगामी होते जाते हैं, जिससे कि उनके पर्यायार्थिकपना स्पष्ट रूप से है ही। पर यहां पर इतना समझ लेना चाहिए इन चार नयों में जब पूर्व की अपेक्षा उत्तर नय सूक्ष्म कहने में आता है, तब वे पूर्ववर्ती नय उतने ही अंशों में उत्तर नय की अपेक्षा सामान्यगामी हैं। इस रीति से द्रव्यार्थिक नय की भूमिका ऊपर गोष्ठी को प्राप्त हुए नैगम आदि तीनों नय, पूर्ववर्ती की अपेक्षा उत्तरवर्ती सूक्ष्म हैं ~~तो भी~~ ~~तो भी वे~~ पूर्व-वर्ती नय की अपेक्षा विशेषगामी ही हैं। इस प्रकार प्रारंभ के तीन नय द्रव्यार्थिक और पीछे की चार नय पर्यायार्थिक —